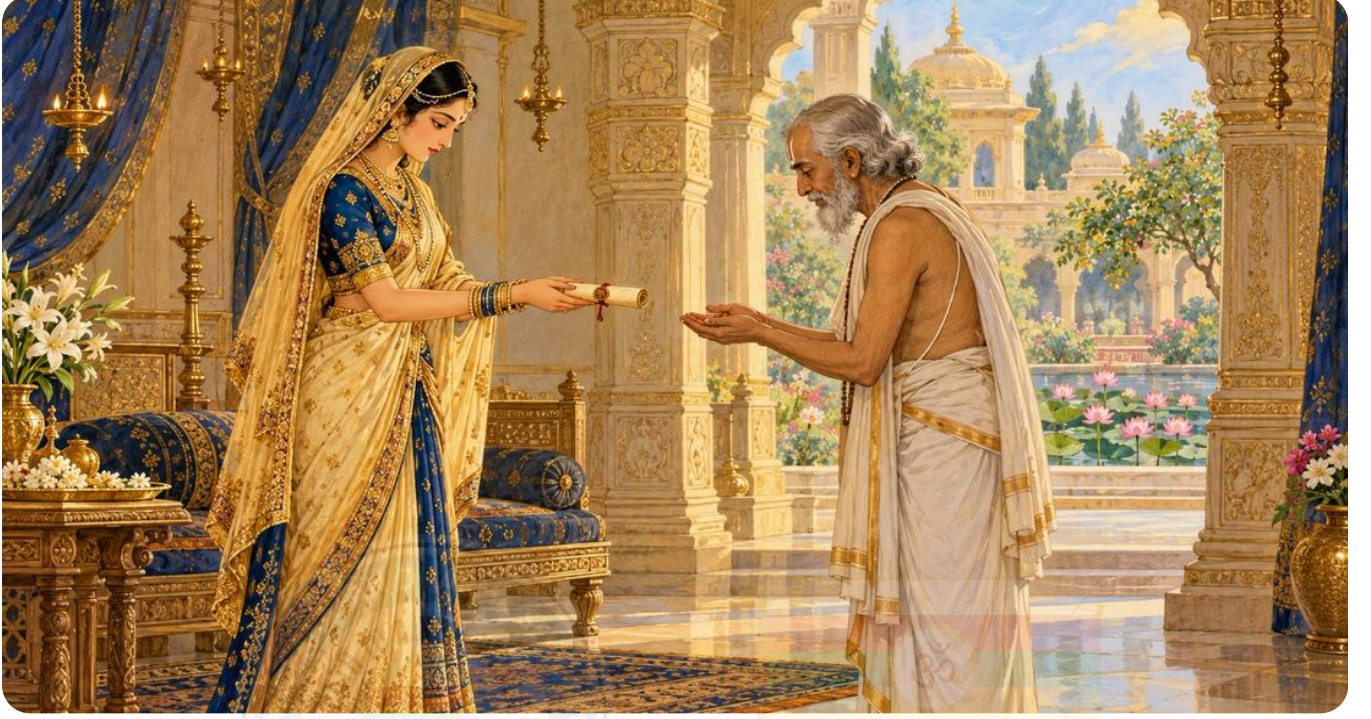


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 52 — रुक्मिणी का संदेश

5 October 2026



जिस राजकुमारी ने कृष्ण को कभी देखा तक नहीं, वह केवल सुनने के बल पर उन्हें अपना हृदय अर्पित कर देती है और एक विश्वस्त ब्राह्मण को समुद्र पार द्वारका भेजती है — जहाँ प्रभु अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर उसके दूत की सेवा अपने हाथों से करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस बावनवें अध्याय में जरासन्ध दोनों भाइयों के नीचे पर्वत में आग लगा देता है, बलराम का रेवती से विवाह होता है, और रुक्मिणी यदुनाथ के लिए एक गुप्त संदेश एक ब्राह्मण को सौंपती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 52 (द्विपञ्चाशत्तम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का संदेश
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: बदरिकाश्रम; मथुरा और प्रवर्षण पर्वत; द्वारका; विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर
- केंद्रीय विषय: मुचुकुन्द का प्रस्थान; जलते पर्वत पर जरासन्ध से बचकर निकलना; द्वारका में ब्राह्मण का सम्मान; रुक्मिणी का संदेश
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 1-44
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

अध्याय 51 में कालयवन कृष्ण का पीछा करते हुए गुफा में घुसा और सोए हुए राजा मुचुकुन्द की दृष्टि से भस्म हो गया। प्रभु को पहचानकर मुचुकुन्द ने शरणागति की प्रार्थना की, और कृष्ण ने वरदान दिया कि वे मन उनमें लगाए पृथ्वी पर विचरण करें, अगले जन्म में ब्राह्मण हों और फिर उन्हें प्राप्त करें।

मुचुकुन्द का बदरिकाश्रम की ओर प्रस्थान

इस प्रकार अनुगृहीत होकर इक्ष्वाकुवंश के आनन्द मुचुकुन्द ने प्रभु की परिक्रमा की, प्रणाम किया और गुफा के द्वार से बाहर निकल आए। मनुष्य, पशु, लताएँ और वृक्ष — सब छोटे हो गए थे; इससे उन्होंने समझ लिया कि कलियुग आ पहुँचा है, और वे उत्तर की ओर चल पड़े। तपस्या में श्रद्धावान, आसक्ति और संशयों से मुक्त, कृष्ण में मन लगाए हुए वे गन्धमादन के वन में प्रविष्ट हुए और अन्ततः नर-नारायण के आश्रम बदरिकाश्रम पहुँचे, जहाँ उन्होंने तपस्या से श्रीहरि की आराधना की।

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।

सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

badary-āśramam āsādy nara-nārāyaṇālayam sarva-dvandva-sahaḥ śāntas tapasārādhaya dharim

अर्थ: नर-नारायण के धाम बदरिकाश्रम पहुँचकर, समस्त द्वन्द्वों को सहते हुए और शान्त चित्त से उन्होंने तपस्या द्वारा श्रीहरि की आराधना की। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 4)



कृष्ण से अनुगृहीत मुचुकुन्द गुफा से निकलते हैं, कलियुग का आगमन देखते हैं, और तपस्या से श्रीहरि की आराधना के लिए उत्तर में बदरिकाश्रम की ओर चल पड़ते हैं (श्लोक 1-4)।

प्रभु मथुरा लौटते हैं और जरासन्ध फिर आता है

भगवान यवनों से घिरी मथुरा में लौटे, म्लेच्छ-सेना का संहार किया और उसका धन द्वारका ले जाने लगे। किन्तु जब वह धन कृष्ण के आदेश से बैलों और मनुष्यों पर लादकर ले जाया जा रहा था, तभी तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर जरासन्ध फिर आ पहुँचा। शत्रु-सेना के प्रचण्ड वेग को देखकर मनुष्य-लीला अपनाए हुए बलराम और कृष्ण उसी क्षण मुड़कर भाग चले, और वह अपार धन वहीं छोड़ दिया।

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ।

पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

*vihāya vittaṁ pracuram abhītau bhīru-bhīta-vat padbhyāṁ padma-palāśābhyāṁ celatur bahu-
yojanam*

अर्थ: उस प्रचुर धन को छोड़कर, निर्भय होते हुए भी भयभीत की भाँति, वे दोनों कमल-दल जैसे कोमल चरणों से अनेक योजन दूर चले गए। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 8)

उन्हें भागते देख जरासन्ध ज़ोर से हँस पड़ा और दोनों ईश्वरों की वास्तविक महिमा को न जानते हुए रथ-सेना लेकर उनका पीछा किया।

प्रवर्षण पर्वत की ज्वाला

दूर तक दौड़कर, मानो थके हुए, दोनों भाई प्रवर्षण नामक ऊँचे पर्वत पर चढ़ गए, जहाँ इन्द्र निरन्तर वर्षा करते हैं। जरासन्ध ने समझ लिया कि वे पर्वत पर छिपे हैं, पर स्थान न पा सका; तब उसने पर्वत को लकड़ियों के ढेर से घेरकर सब ओर से आग लगा दी। तब ग्यारह योजन ऊँचे उस शिखर से, जिसके तट जल रहे थे, वे दोनों प्रचण्ड वेग से कूदे और नीचे मैदान में उतर आए।



जरसन्य प्रवर्षण पर्वत को चारों ओर से आग लगा देता है; उसके जलते शिखर से दोनों भाई नीचे मैदान में कूद पड़ते हैं और अदृश्य रहकर द्वारका लौट आते हैं (श्लोक 10-13)।

शत्रु और उसके अनुचरों की दृष्टि से ओझल, यदुश्रेष्ठ दोनों भाई समुद्र-परिखा वाली द्वारका लौट आए। बलराम और केशव को जल गया मानकर जरसन्य अपनी विशाल सेना लेकर मगध लौट गया।

दो विवाहों का उल्लेख

अब शुक्रदेवजी ने दो विवाहों की बात कही। आनर्त के श्रीमान अधिपति रैवत ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से अपनी पुत्री रेवती बलराम को दी थी — यह कथा पहले कही जा चुकी है। और स्वयं भगवान गोविन्द ने विदर्भराज भीष्मक की पुत्री, श्री की अंशस्वरूपा रुक्मिणी से स्वयंवर में विवाह किया: चेदिराज के पक्ष के शाल्व आदि राजाओं को मथकर, सब लोकों के देखते-देखते वे उसे वैसे ही हर ले गए जैसे गरुड़ अमृत हर ले गए थे।



ब्रह्माजी की प्रेरणा से आनर्त के अधिपति रैवत अपनी पुत्री रेवती बलराम को विवाह में देते हैं (श्लोक 15)।

परीक्षेत को सुनने को उत्कण्ठा

‘सुना है,’ राजा ने कहा, ‘कि भगवान ने भीष्मक की सुन्दर मुखवाली पुत्री रुक्मिणी से राक्षस-विधि से, बलपूर्वक, विवाह किया। हे भगवन्, मैं सुनना चाहता हूँ कि अमित तेजस्वी कृष्ण ने जरासन्ध, शाल्व आदि को जीतकर कन्या का हरण कैसे किया।’ फिर उन्होंने वे शब्द कहे जिन्हें भागवत का प्रत्येक श्रोता तब से दोहराता आया है:

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीलोकमलापहाः ।

को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

brahman kṛṣṇa-kathāḥ puṇyā mādhvīr loka-malāpahāḥ ko nu tṛpyeta śṛṇvānaḥ śruta-jñō nitya-nūtanāḥ

अर्थ: हे ब्रह्मन्, कृष्ण की कथाएँ पवित्र हैं, मधु-सी मधुर हैं, लोक के मल को हरने वाली हैं और नित्य नवीन हैं; जो सुने हुए का मर्म समझता है, ऐसा कौन व्यक्ति उन्हें सुनकर कभी तृप्त हो सकता है? (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 20)

विदर्भ की राजकुमारी

शुकदेवजी ने कहना आरम्भ किया। विदर्भ के महान राजा भीष्मक के पाँच पुत्र और सुन्दर मुखवाली एक पुत्री थी। ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी था; उसके बाद रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली; उनकी सती बहन थी रुक्मिणी। राजभवन में आने वाले लोग मुकुन्द के रूप, पराक्रम, गुण और ऐश्वर्य के गीत गाते, और उन्हें ध्यान से सुनकर रुक्मिणी ने उन्हें अपने योग्य पति मान लिया। कृष्ण ने भी ऐसे ही वृत्तान्तों से जान लिया था कि वह बुद्धि, शुभ लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुणों की आश्रय है, और उस योग्य कन्या से विवाह का निश्चय किया। उसके माता-पिता और भाई उसे कृष्ण को देना चाहते थे; पर कृष्ण-द्वेषी रुक्मी ने उन्हें रोककर चेदिराज शिशुपाल को चुन लिया। यह जानकर कजरारे नेत्रों वाली राजकुमारी अत्यन्त व्याकुल हुई; उसने विचार किया और शीघ्र ही एक विश्वस्त ब्राह्मण को कृष्ण के पास भेजा।

द्वारका में ब्राह्मण

द्वारपालों द्वारा द्वारका में प्रवेश पाकर ब्राह्मण ने आदिपुरुष को स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान देखा। उन्हें देखते ही ब्राह्मण-प्रिय प्रभु अपने आसन से उतर आए, अतिथि को उस पर बिठाया और उनकी वैसी ही पूजा की जैसी देवता कृष्ण की करते हैं जब वे उनके लोक में जाते हैं। जब ब्राह्मण भोजन करके विश्राम कर चुके, तब सन्तों के आश्रय प्रभु उनके पास बैठे, अपने हाथ से उनके चरण दबाए और शान्त स्वर में पूछा: ‘हे द्विजश्रेष्ठ, वृद्धजनों द्वारा सम्मत आपका धर्म बिना अधिक कष्ट के चल रहा है न? आपका मन सदा सन्तुष्ट रहता है न? जब ब्राह्मण जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहता है और अपने धर्म से नहीं डिगता, तो वही सन्तोष उसके लिए सब कामनाएँ पूर्ण करता है। असन्तुष्ट इन्द्र भी लोक-लोक भटकता है और विश्राम नहीं पाता; पर सन्तुष्ट जन, कुछ न होते हुए भी, ज्वर-रहित होकर सुख से सोता है।’

विप्रान् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ।

निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसासकृत् ॥ ३३ ॥

viprān sva-lābha-santuṣṭān sādḥūn bhūta-suhṛttamān nirahaṅkāriṇaḥ śāntān namasye śirasāsakṛt

अर्थ: जो मिले उसी में सन्तुष्ट, साधु-स्वभाव, समस्त प्राणियों के परम हितैषी, अहंकार-रहित और शान्त ब्राह्मणों को मैं बार-बार सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 33)



ब्राह्मण को देखते ही कृष्ण अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर उन्हें उस पर बिठाते हैं, और भोजन के बाद उनके पास बैठकर चरण दबाते हुए कुशल पूछते हैं (श्लोक 27-33)।

‘आप अपने राजा के राज्य में कुशल से हैं न?’ प्रभु ने आगे पूछा। ‘जिसके राज्य में प्रजा उसकी रक्षा में सुख से रहती है, वह राजा मुझे प्रिय है। यदि गुप्त न हो तो बताइए — आप कहाँ से और क्या चाहकर यह दुस्तर समुद्र पार कर आए हैं। हम आपका कौन-सा कार्य करें?’ लीला के लिए देह धारण किए परमेश्वर द्वारा इतनी कृपा से पूछे जाने पर ब्राह्मण ने सब कुछ कह सुनाया — और राजकुमारी के शब्द उन तक पहुँचाए।

रुक्मिणी का संदेश

रुक्मिणी के शब्द किसी याचना से नहीं, इस स्वीकारोक्ति से आरम्भ होते हैं कि उसे उनसे प्रेम कैसे हुआ:

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

śrutvā guṇān bhuvana-sundara śṛṇvatām te nirviśya karṇa-vivarair harato 'ṅga-tāpam rūpaṁ dṛśāṁ dṛśimatām akhilārtha-lābhaṁ tvayy acyutāviśati cittam apatrapaṁ me

अर्थ: हे भुवनसुन्दर, सुनने वालों के कानों के मार्ग से हृदय में प्रवेश कर उनके अंगों का ताप हरने वाले आपके गुणों को, और नेत्रवालों को उनके नेत्रों का सम्पूर्ण फल देने वाले आपके रूप को सुनकर, हे अच्युत, मेरा चित्त लज्जा त्यागकर आपमें प्रविष्ट हो गया है। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 37)

‘हे मुकुन्द,’ वह आगे कहती है, ‘कौन कुलवती, धीर और श्रेष्ठ कन्या, समय आने पर, आपको पति न चुनेगी — जो कुल, शील, रूप, विद्या, आयु, धन और तेज में केवल अपने ही समान हैं, हे नरसिंह?’ फिर वह अपना वरण घोषित करती है और उस संकट का नाम लेती है जो उस पर मँडरा रहा है।

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्षितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥

*tan me bhavān khalu vṛtaḥ patir aṅga jāyām ātmārṣitaś ca bhavato 'tra vibho vidhehi mā vīra-
bhāgam abhimarśatu caidya ārād gomāyu-van mṛga-pater balim ambujākṣa*

अर्थ: इसलिए हे प्रिय प्रभु, मैंने आपको ही अपना पति चुना है और यह आत्मा आपको अर्पित है; हे विभो, यहीं मुझे अपनी पत्नी बना लीजिए। हे कमलनयन, चेदिराज, जैसे सियार सिंह के भाग को छूता है, वैसे वीर के इस भाग को न छू पाए। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 39)

यदि परमेश्वर उसके पुण्य-कर्मों, यज्ञों और दानों, व्रतों तथा देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों की पूजा से प्रसन्न हुए हों, तो गदाग्रज ही आकर उसका पाणिग्रहण करें — दमघोष का पुत्र या कोई अन्य नहीं। वह योजना बताती है: ‘हे अजित, विवाह से एक दिन पहले अपने सेनापतियों के साथ गुप्त रूप से विदर्भ आइए; चेदि और मगध की सेनाओं को मथकर, पराक्रम को ही शुल्क मानकर, राक्षस-विधि से मुझसे विवाह कीजिए।’ उनकी सम्भावित आपत्ति का — कि अन्तःपुर में रहने वाली उसे बन्धुओं को मारे बिना कैसे ले जाया जाए — उत्तर भी वह पहले दे देती है: विवाह से पूर्व दिन नववधू को कुलदेवी गिरिजा के दर्शन के लिए यात्रा में नगर से बाहर जाना होता है। फिर आती है वह प्रतिज्ञा जो उसके संदेश पर मुहर लगाती है:

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्हम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून्नतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥

*yasyāṅghri-pankaja-rajah-snapanam mahānto vāñchanty umā-patir ivātma-tamo-'pahatyai
yarhy ambujākṣa na labheya bhavat-prasādam jahyām asūn vrata-kṛśān śata-janmabhiḥ syāt*

अर्थ: जिनके चरण-कमलों की धूलि में स्नान की कामना उमापति जैसे महापुरुष अपने हृदय का अन्धकार मिटाने के लिए करते हैं — हे कमलनयन, यदि मुझे आपकी कृपा न मिली, तो व्रतों से क्षीण इन प्राणों को त्यागकर मैं सौ जन्मों तक उसे पाने का प्रयत्न करूँगी। (स्कन्ध 10, अध्याय 52, श्लोक 43)

ब्राह्मण के अन्तिम शब्द

‘हे यदुदेव, ये गुप्त संदेश मैं लाया हूँ,’ ब्राह्मण ने समाप्त किया। ‘इन पर विचार कर जो करना हो, उसे अविलम्ब कीजिए।’ प्रभु का उत्तर आगे की कथा का अंग है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु मानव-भूमिका पूरी तरह निभाते हैं। सब भयों से परे निर्भय कृष्ण और बलराम, श्लोक 8 के अनुसार, ‘भयभीत की भाँति’ जरासन्ध से भागते हैं और जलते शिखर से कूदते हैं। प्रभु अपनी शक्ति को ढक लेते हैं ताकि उनकी लीलाएँ मानव-कथा की तरह रस दें।
2. कृष्ण-कथा से कभी तृप्ति नहीं होती। श्लोक 20 में परीक्षित की पुकार भागवत की अपनी स्वीकारोक्ति है: कृष्ण की कथाएँ पवित्र, मधुर, पावन और नित्य नवीन हैं, और जो उन्हें समझता है वह कभी अघाता नहीं।
3. ईश्वर विनम्र के आगे झुकते हैं। प्रभु एक निर्धन ब्राह्मण को अपने स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाते हैं, उसके चरण दबाते हैं और श्लोक 33 में कहते हैं कि सन्तुष्ट और अहंकार-रहित ब्राह्मणों को वे बार-बार सिर झुकाते हैं।
4. सन्तोष वह धन है जो हर कामना पूरी करता है। जो मिले उसी में सन्तुष्ट और अपने धर्म में निष्ठ व्यक्ति सब आशीर्वाद पाता है, प्रभु ब्राह्मण से कहते हैं, जबकि असन्तुष्ट इन्द्र को भी विश्राम नहीं मिलता।
5. प्रभु ने रुक्मिणी-हरण की यह लीला क्यों रची। रुक्मिणी श्री की अंश हैं, प्रभु की नित्य संगिनी; फिर भी वे उन तक उसी मार्ग से आती हैं जो हर आत्मा के लिए खुला है — भक्तों से उनके गुण सुनना, श्लोक 37 में हृदय का समर्पण, श्लोक 39 में उनका वरण, और श्लोक 43 में सौ जन्मों तक अडिग रहने की प्रतिज्ञा। मानव-भूमिका निभाकर प्रभु अपनी ही लक्ष्मी के द्वारा संसार को दिखाते हैं कि आत्मा उन तक कैसे पहुँचती है: दर्शन से नहीं, बल्कि श्रवण से जन्मी श्रद्धा और उस प्रेम से जो स्वयं को पूरा अर्पित करता है और सौदा नहीं करता। उसका संदेश ग्रहण करते हुए वे दिखाते हैं कि ऐसी शरणागति का उत्तर वे कैसे देते हैं — सिंहासन से उतरकर।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में दो यात्राएँ एक-दूसरे को काटती हैं, और दोनों श्रद्धा के बल पर होती हैं। मुचुकुन्द उस प्रभु की आराधना के लिए उत्तर की ओर चल पड़ते हैं जिन्हें उन्होंने अभी-अभी देखा है; रुक्मिणी ने उन्हें कभी देखा ही नहीं, फिर भी उसका चित्त कानों के मार्ग से उनमें प्रविष्ट हो चुका है। दोनों के बीच खड़ा है एक ब्राह्मण, जो केवल एक संदेश लेकर समुद्र पार करता है — और पाता है कि जगत के स्वामी उसके थके चरण दबा रहे हैं। जो प्रभु अपने चारों ओर पर्वत को जलने देते हैं, वे एक विनम्र सेवक के आते ही अपने स्वर्ण-आसन से उतर आते हैं। रुक्मिणी कृष्ण से स्वयं को योग्य सिद्ध करने को नहीं कहती; वह घोषित करती है कि उसने उन्हें चुन लिया है, और कृपा न मिली तो वह सौ जन्म प्रतीक्षा करेगी। हम उनके गुण सुनकर द्रवित होते हैं, फिर समर्पण से पहले देखने की प्रतीक्षा करते हैं। वह केवल सुनकर समर्पित हो जाती है।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज कुछ शान्त क्षण केवल प्रभु के विषय में सुनने के लिए निकालें — एक श्लोक का पाठ, एक कीर्तन, इस अध्याय का एक अंश — और देखें कि यह श्रवण आपके हृदय को कहाँ ले जाता है। फिर उसके संकल्प को अपने शब्दों में कहें: ‘मैंने आपको चुन लिया है; मैं सौदा नहीं करूँगा।’ यदि कोई अतिथि आपके द्वार आए, तो उसकी सेवा वैसे करें जैसे कृष्ण ने ब्राह्मण की की। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

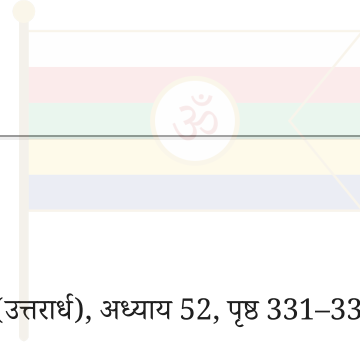
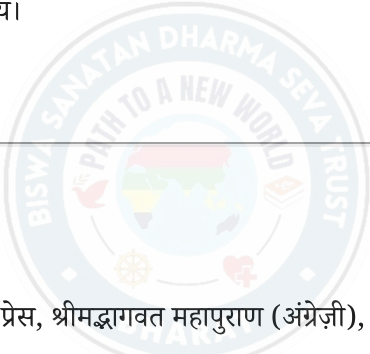
उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह बावनवाँ अध्याय जलते प्रवर्षण से मुड़कर एक शान्त आश्चर्य तक आता है: कृष्ण के अपने सिंहासन पर बैठा एक ब्राह्मण, और एक राजकुमारी जिसने प्रभु को बिना देखे ही चुन लिया। रुक्मिणी के संदेश में भागवत दिखाता है कि शरणागति की ध्वनि कैसी होती है — श्रवण से जन्मी श्रद्धा, बिना शर्त अर्पित आत्मा, और सौ जन्मों तक अडिग रहने की प्रतिज्ञा। हम भी, उसकी तरह प्रभु के गुण सुनकर, उसी निःसंकोच हृदय से उन्हें चुनें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 52, पृष्ठ 331–336।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-52-rukminis-message-to-lord-krishna-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

